Integr. J. Soc Sci., 2014, 1(1), 21-23 Article

INTEGRATED JOURNAL OF
SOCIAL SCIENCES

नारी साहित्य लेखनः इतिहास विकास और वर्तमान

राजेश पासवान,[1] प्रीति कुमारी[2#]

[1] *एसो0 प्रोफेसर,* [2] *शोधार्थिनी, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। पिन–110067*

[#] *स्कूल ऑफ हयूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, वेंकटेश्वर नगर, रजबपुर, गजरौला, जिला–अमरोहा। उ.प्र.। पिन–244236*

Received: 02-Feb-2014

नारी सृष्टि रूपी है। नारी सशक्तीकरण के युग में आज इस वर्ग का अस्तित्व आधी आबादी और आधी दुनिया के रूप में है। अब वह सृष्टि की मूल, पुरुष की जीवनसंगिनी और उत्पत्ति की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रभावी भूमिका में है। पुराकाल से आज तक नारी जन्मदात्री, पालनहारी, प्रेयसी, पुत्री, देवी, सती, दानवी और पवित्रता के प्रतिमान प्रस्तुत कर प्रकृति के सृष्टि मंच पर विराजमान है।

सदियों से नारी प्रकृति रूपी है। वह सृष्टि रूपी है। नारी सशक्तीकरण के युग में आज इस वर्ग का अस्तित्व आधी आबादी और आधी दुनिया के रूप में है। अब वह सृष्टि की मूल, पुरुष की जीवनसंगिनी और उत्पत्ति की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रभावी भूमिका में है। पुराकाल से आज तक नारी जन्मदात्री, पालनहारी, प्रेयसी, पुत्री, देवी, सती, दानवी और पवित्रता के प्रतिमान प्रस्तुत कर प्रकृति के सृष्टि मंच पर विराजमान है। चिरकाल से ही वह मानव को प्रभावित कर स्वयं एक अबूझ पहेली के रूप–स्वरूप में चित्रित किए हुए है।

नारी शब्द की व्युत्पत्ति 'न' अथवा 'नर' शब्द से हुई है। नर +ङीब = नारी। ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग वीरता का काम करने, दान देने और नेतृत्व करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कालांतर में स्त्री का नाम नारी भी इन्हीं विशेषताओं के कारण पड़ा।[1]

नारी की एक मुस्कान ने यदि चराचर को विमुग्ध किया है तो उसकी बंकिम दृष्टि ने रौद्र रूप में सृष्टि के प्रलय की भूमिका भी निभाई है। एक ओर वह सृष्टि है, दूसरी ओर प्रलय। पुरुष निसंग है स्त्रीबद्ध। पुरुष स्त्री को शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है, पर स्त्री, स्त्री को शक्ति समझकर अधूरी रह जाती है। इसके अतिरिक्त उसकी सफलता पुरुष को बांधने में है। यद्यपि दोनों परम शिव के एक ही तत्व से प्रकट हुए हैं, जिनका नामकरण हुआ शिव और शक्ति। शिव विधि रूप है, स्त्री निषेध–रूपा। इन दोनों के प्रस्पंद और विस्पंद से इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। पिंड में शिव का प्राधान्य ही पुरुष है और शक्ति का प्राधान्य नारी।''[2]

नारी इस सृष्टि में ईश्वर की अद्वितीय कृति है, जो साहित्य, कला और समाज का चिरंतन विषय है। नारी पुरुष से सहयोग करने वाला एक सुंदर और सुकुमार अंग है। प्रेम आकार लेकर धरती पर अवतीर्ण होता है, नारी के माध्यम से। जननी के रूप में संस्कृति के लिए वही अविलंब वृत्त धारण करती है।''[3]

नारी लेखन के बिना भारतीय लौकिक और अलौकिक साहित्य नीरस है। उसके रूप, सौंदर्य और गुणों से ही साहित्य की शोभा है। नारी से ही नर शक्तिवान कहलाया है। नारह सृष्टि के उद्भव और वर्तमान तक वह नर के जीवन का पोषण और उन्नयन करती रही है। उसकी उपस्थिति पौराणिक काल के साहित्य से ही उपलब्ध होती है। नारी के बिना मनुष्य, जीव प्रकृति और उत्पत्ति की जैसे कल्पना ही नहीं की जा सकती तो साहित्य विमर्श और लेखन का अस्तित्व क्या? जो नारी की उपेक्षा का साहस कर सके।

वैदिक काल से ही भारतीय साहित्य में नारी की उपस्थिति रही है। हालांकि वह प्रत्येक कदम पर पुरुष द्वारा नियमित और अनुशासित होती रही है। फिर भी विश्व की सभी सभ्यताओं के साहित्य में नारी लेखन को प्रश्रय मिला है।

धार्मिक ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि प्राचीन वैदिक सभ्यता में नारी की दशा बहुत ही सम्मानपूर्ण थी। ''वैदिक सभ्यता में आर्य नारी की दशा भी सुदृढ़ थी। उक्त युग के उत्तरार्द्ध और वैदिक सभ्यता के बाद भले ही समाज में कन्या जन्म का स्वागत नहीं किया जाता था। परंतु बाद में परवर्ती पुत्रों की भांति इस युग में कन्या का उपनयन संस्कार भी होता था। उन्हें शिक्षा का अधिकार मिल गया था। उच्च शिक्षा सुसंस्कृत एवं धनी परिवारों तक ही सीमित थी, किंतु साधारण परिवारों में भी कन्याओं को वेद मंत्रों और प्रार्थनाओं के शुद्ध उच्चारण कंठस्थ कराए जाने के उदाहरण मिलते हैं।''[4]

गृहस्थाश्रम की सफलता का श्रेय नारी को ही जाता है। प्राचीनकाल में नारी प्रतिष्ठित पद पर विराजमान थी। मनु ने भी सामाजिक ग्रंथ 'मनुस्मृति' में लिखा है–

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफला क्रियाः।''[5]

अर्थात् जिस कुल में नारी की पूजा होती है, उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं। और जिस कुल में नारी की पूजा द्वारा आदर–सत्कार नहीं होता, उस कुल में सब कर्म निष्फल होते हैं।

मनुस्मृति के पश्चात उपनिषदों में भी वर्णित है कि सृष्टि की रिक्तता की पूर्ति नारी में मानी गई है। प्रस्तुत भी है–

'सृष्टि की संपूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री में मानी गई है।''[6]

Address:
Preeti Kumari
c/o Dr. Rajesh Paswan, School of Indian Languages,
Jawaharlal University, New Delhi-110067
Tel: 011-26704090
Email: preetirathi.hindi@gmail.com

Cite as: *Integr. J. Soc. Sci., 2014, 1(1), 21-23.*

©IS Publications IJSS ISSN 2348-0874

'शतपथ ब्राह्मण' के अंतर्गत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी और पुरुष को समान माना गया है। उनकी समकक्षता के आख्यान प्रस्तुत किए गए हैं। यथा वर्णित भी है–

"स्त्री और पुरुष दल के दलों की भांति हैं।"[7]

नारी का सबसे सशक्त रूप वैदिक रूप में देखने को मिलता है। उस युग में अनेक नारियां ज्ञान के क्षेत्र में विश्वविख्यात हुईं। इनमें लोपमुद्रा, मैत्रेयी, घोष और गार्गी आदि प्रमुख हैं। उस समय विवाह के लिए स्वयंवर प्रथा थी। नारी गृहस्थ धर्म में उचित गरिमा की पात्र थीं। दृष्टव्य है–

"साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु"[8]

सती हो जाना भी उसकी इच्छा पर निर्भर था। वैदिक युग में नारी यज्ञ–कर्म में भाग लेती थी। पुत्र न होने पर पिता की संपत्ति की अधिकारिणी पुत्री को ही माना जाता था। मातृत्व को दैवी शक्ति माना जाता था। संतान के लिए पिता, वंश या कुल का नाम नहीं होने पर वह माता के नाम से परिचय करती थी। उपनिषदों में वर्णित पुत्र सत्यकाम और माता जाबाला की कथा इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। जिसमें पिता का अज्ञात रहना उसकी शिक्षा–दीक्षा में बाधक नहीं बनता।

वैदिक काल के पश्चात नारी की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का दौर आया। इस युग में मनुस्मृति के साथ–साथ धर्मसूत्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र और अनेक महाकाव्यों की रचना हुई। इस युग में नारी और शूद्रों की मुक्ति का एकमात्र मार्ग भक्ति ही रहा। 'मनुस्मृति' में तो आगे बढ़कर स्त्री जाति पर अंकुश लगा दिए कि वह जीवित प्राणी के बदले पराधीन भोग की वस्तु बनकर रह गई। मनु के अनुसार स्त्री कभी भी स्वतंत्र्यता के योग्य नहीं। कुमारी अवस्था में स्त्री की रक्षा पिता करेंगे, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र। यथा वर्णित भी है–

"पिता रक्षति कौमार्यो, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमहर्ति।"[9]

मनुकाल में नारी का कर्तव्य पुरुष की सेवा करना ही था। पतिसेवा ही उसका संस्कार था। यदि कोई स्त्री विवाह न करती तो उसे संस्कार विहीन और पाप की खान समझा जाता था। 'अपितना तू नारीणा, मद्यप्रभूति पातकम।'के अनुसार स्त्री पुरुषों से कभी तृप्त नहीं होती। वह न तो रूप देखती है न वय। उसे तो केवल नर चाहिए। यथा–

"नैता रूपं परीक्षन्ते, नासां वयसि स्थितः सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येत भुंजते।"[10]

मनु ने स्त्री के चरित्र को विचित्र माना है। यह काल नारी के लिए अत्यंत हीन था। नारी की आजादी इस काल में छीन ली गई। रूढ़िवादता, धार्मिक रीति–रिवाजों की आचार संहिता में उसे जकड़ लिया गया। इनकी आड़ में नारी को विभिन्न प्रकार की यातनाएं भी दी गईं।

रामायण और महाभारत काल में नारी को सम्मान दिया जाता था। परंतु पतिसेवा और आज्ञापालन ही उसका धर्म समझा गया। इस काल में नारी को वस्तु का दर्जा दिया गया। रामायण में राम ने एक सामान्य व्यक्ति की आलोचना की खातिर सीता को वनवास दे दिया। महाभारत में युधिष्ठिर ने द्रौपदी को जुएं के दांव पर लगा दिया। इस युग में नारी को भोग्या ही माना गया। बहुपत्नीक प्रथा प्रचलित थी। नारी की हीन दशा का वर्णन ही धार्मिक ग्रंथों में मिलता है।

बौद्ध काल के साहित्य में नारी की दशा में काफी सुधार हुआ। कर्मकांड और रूढ़िवादिता की जंजीरों को तोड़कर स्त्री शिक्षा और पुनर्विवाह को बढ़ावा मिला। इस संबंध में रोमिला थापर लिखती भी हैं–

''समाज के हर वर्ग के स्त्री पुरुषों को 'भिक्खुनी' तथा 'भिक्खु' बना लिया करते थे। इसीलिए शिक्षा केवल कुछ उच्चस्थ लोगों तक ही सीमित नहीं रही। इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि ब्राह्मण–रूढ़ीवादिता धीरे–धीरे स्त्रियों की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने का प्रयत्न कर रही थी, स्त्रियों को भिक्खुनियों के रूप में स्वीकार करना उनकी अवस्थिति के विचार से एक क्रांतिकारी कदम था।''[11]

इस काल में समाज द्वारा पीड़ित नारी को इस धर्म में सहानुभूति प्राप्त हुई। बहु–विवाह की प्रथा थी। पर्दा प्रथा का प्रचलन बड़े–बड़े घरों में था। यदि किसी स्त्री का पति अयोग्य होता तो वह उसका तलाक देकर न्यायालय में पति के विरोध में न्याय की अपेक्षा कर सकती थी।

मध्यकाल में नारी की स्थिति अत्यंत शोचनीय बन गई। मुगलों के आक्रमण बढ़ गए। लड़कियों का अपहरण और क्रय–विक्रय होने लगा। कम उम्र में ही उनके विवाह होने लगे। पर्दाप्रथा का चलन बढ़ा और शिक्षा–दीक्षा समाप्त होकर नारी घर की चारदीवारी में बंद हो गई। सती प्रथा चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी। लेखिका आशारानी व्होरा ने इस संबंध में लिखा है–

''स्त्रियों के समस्त अधिकार छीन लिए गए। स्वतंत्रता नाममात्र को रह गई। यह दमनचक्र दसवीं शताब्दी में भारत में विदेशियों के आक्रमणों के साथ चलना शुरु हुआ था और सोलहवीं शताब्दी में मुगलों के भारत आगमन के साथ गतिशील हुआ जो उन्नीसवीं शताब्दी तक अपनी चरमसीमा तक पहुंच गया।''[12]

इस युग में मुस्लिम संस्कृति में स्त्रियों पर बड़ा अंकुश था। कुरान में स्पष्ट कहा गया है कि–

''स्त्री मर्द की पसली की हड्डी से बनाई गई है जिसका काम पति यानी पुरुष को हमेशा खुश रखना है, नही तो वे जहन्नुम की हकदार होंगी।''[13]

हिंदी साहित्य में नारी लेखन:– हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों में नारी की जो स्थिति रही है वह निम्नवर्णित है–

आदि काल:–आदि काल में नारी की स्थिति बेहतर नहीं थी। वह मात्र मनोरंजन का साधन और भोग्या रूप में ही परिलक्षित होती है। नारी को लेकर ही इस काल में युद्धों की कल्पना, योजना और उसको अंजाम दिया जाता था। ताकतवर राजा दूसरे राजा की रानी और पुत्री के संबंध में अपने दरबारी कवियों की प्रशंसाआदि पर ही उसे बलात् प्राप्त करने का अवसर तलाशते थे। इस काल के वीरकाव्य में जैसाकि वर्णित भी है–

'जिहि की बिटिया सुंदर देखी, तिहि के जाय धरे हथियार'[14]

भक्ति काल:– भक्ति काल में भी नारी की स्थिति में बहुज सुधार नहीं आया। स्थिति जस की तस ही थी। भक्ति काल के प्रमुख कवि तुलसीदास ने ढोल, गंवार और नारी को मात्र प्रताड़ना का अधिकारी माना है। यथा–

'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।'[15]

रीति काल:– रीतिकाल में भी नारी के रूप सौंदर्य का ही वर्णन ज्यादा किया गया है। कवियों ने इस काल की नारी का वर्णन माता और कन्या के रूप में न करके उसके सौंदर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्र उकेरे हैं। 'नखशिख वर्णन' करके उसे मात्र भोगविलास की वस्तु के रूप में परोसा है। जायसी कृत पदमावत और अन्य कवियों के काव्य में नारी को भोग्या के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक काल:– आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त की नारी दीनता की प्रतिमूर्ति है। आंचल में दूध और आंखों में पानी के अतिरिक्त जैसे उसके जीवन में अन्य अभीष्ट की प्राप्ति नहीं। प्रस्तुत भी है–

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहनी,
आंचल में है दूध आंखों में पानी।"[16]

प्रसाद युग में नारी की स्थिति कुछ सम्मानजनक हुई। उन्होंने स्त्री के स्वरूप को पहचाना और उसे श्रृद्धा की प्रतिमूर्ति मानकर वर्णन किया है। प्रसाद ने ऐसी नारी की कल्पना प्रस्तुत की जिसने अपना सर्वस्व, सभी स्वप्न और संकल्प पुरुष हेतु अश्रुओं से दान कर दिए। नारी सम्मान की रक्षा करते हुए प्रसाद जी ने उसे श्रृद्धेय कहा है। उसका उद्देश्य मात्र कामसंगिनी के लिए ही नहीं जीवन को सुंदर बनाना है। यथा–

"क्या कहती हो ठहरो नारी
संकल्प अश्रुजल से अपने
तुम दान कर चुकीं पहले ही
जीवन के सोने से सपने
नारी तुम केवल श्रृद्धा हो।"[17]

आधुनिक युग की आकर्षणता में में दिनकर की नारी स्वच्छंद, मुक्त, भोगी, अप्सरा बन गई है। उसके इन्हीं रूपों को कवियों और लेखकों ने साहित्यप्रेमियों के समक्ष रखा है। उसका बसेरा न जाने कितनों की चाह में है। कितने कामातुरों के आगोश में है। स्पष्ट भी है–

"अपना है आवास न जाने कितनों की चाहों में'
कैसे हम बंध रहे किसी स्त्री नर की दो बाहों में।"[18]

दिनकर की नारी खुले विचारों की है। वह मुक्त होना चाहती है। स्वच्छंद होकर किसी बंधन को स्वीकार नहीं करना चाहती। मातृत्व भी उसको बोझिल लगने लगता है। वह उससे घृणा करने लगती है। महज प्रेम के कारण वह गर्भ की कुरूपता को सहन नहीं करना चाहती। दृष्टव्य भी है–

"किरणमयी यह परी करेगी यह विरूपता धारण,
वह भी और नहीं कुछ, केवल एक प्रेम के कारण।"[19]

काव्य में ही नहीं गद्य साहित्य में नारी लेखन को आवश्यक स्थान मिला है। उसके रूप, स्वरूप, सौंदर्य, व्यक्तित्व और कृतित्व की झांकी हमें साहित्य की विभिन्न विधाओं में परिलक्षित होती है। कहानी और उपन्यास आदि में युगीन परिस्थितियों के बीच नारी लेखन अपनी प्रभावी भूमिकाओं में है। हिंदी कहानीकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' से लेकर कथा सम्राट प्रेमचंद के साहित्य में नारी की विभिन्न प्रकार की समस्याओं, उनकी समाज में स्थिति, उनके जीवन की असाध्यता, पराधीनता और दुर्बलता को अंकित किया गया है। जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय आदि कहानीकारों ने स्त्री की मानसिकता का यशपाल ने पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री के शोषण का चित्रण किया है।

उपन्यास साहित्य में स्त्री के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। बाल विवाह, विधवाओं की स्थिति, अनमेल विवाह जैसी सामाजिक बुराईयों का वर्णन श्रृद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, पंडित बालकृष्ण भट्ट, अयोध्यासिंह उपाध्याय और भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि ने किया है। सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए इन लेखकों ने स्त्री शिक्षा को महत्व दिया है।

प्रेमचंदोत्तर काल में मार्क्सवाद, मनोविश्लेषण आदि विचारधाराओं से युक्त नारी साहित्य का लेखन किया गया। इस समय के कथा साहित्य में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की झलक, और उसका बदला हुआ रूप प्रस्तुत किया गया है। विवाह के प्रति नया दृष्टिकोण, दांपत्य संबंध, व्यक्तिवाद, स्त्री का राजनीति में प्रवेश, मातृत्व परिवर्तन के प्रति नया दृष्टिकोण, अकेली स्त्री और पुरुष के साथ स्पर्धा करने वाली स्त्री और आर्थिक रूप में स्वावलंबी नारी का चित्रण उपन्यासों में मिलता है। युगीन साहित्य में नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'काली कुर्सी की आत्मा', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र', लक्ष्मीनारायण लाल का 'प्रेम अपवित्र नदी', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', कमलेश्वर का 'डाक बंगला', रांगेय राघव का 'प्रतिदिन', सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चांद चाहिए' आदि में नारी की प्रस्तुति एक पुरुष के रूप में की गई है।

आधुनिक युग की कथाकार कृष्णा सोबती ने अपने साहित्य में नारी के विषय में विभिन्न विचार और दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। हमारे समाज में धर्म की आड़ में स्त्रियों पर मनमाना अत्याचार करने की छूट दी है। नारी को व्यवहार में निम्न माना जाता है। लेखिका ने नारी के मन के सूक्ष्म भावों को खोलने का प्रयास किया है जिस प्रकार प्रेमचंद ने भारतीय गांव और ग्रामीण जनता को अपने उपन्यासों का विषय बनाया उसी प्रकार कृष्णा सोबती ने नारी जीवन की गुत्थियों और नारी मन की गहराईयों को उभारा है। जिस नारी का वर्णन लेखिक करती है उसमें अप्रितम साहस है। संघर्ष करने की सामर्थ्य है। उनका नारी विषयक विचार यह कहता है कि नारी अब पहले जैसे बेजान गुड़िया नहीं है जो पुरुष के कारण अपना अस्तित्व को मिटा दे। अपने व्यकितत्व को पहचानने के कारण आज इनकी नारियां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं।"[20]

आज नारी पुरुष के समान अधिकार पाने की इच्छा रखती है। लेखिक की प्रत्येक नारी के भीतर स्वतंत्र होने की चाह जागती रही है। कृष्णा सोबती का कहना है– "नारी में विद्रोह और आक्रोश की भावना होनी चाहिए। उसे पुराने मूल्यों का डटकर मुकाबला करना चाहिए। अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए अपनी एक अलग पहचान बनानी चाहिए।"[21]

नारी जीवन के उस रूप को लेकर लेखन की शुरुआत उन्होंने की है जो सिर्फ एक भोग्या है। पुरुष ने उसे खिलौना समझा है और उसे अपनी हवस का शिकार बनाकर इस समाजरूपी जंगल में उसे अकेले भटकने और तड़पने के लिए छोड़ दिया है। नारी पर पुरुष जाति ने बहुत अत्याचार और जुल्म किए है। इसके लिए उनके नारी विषयक लेखन में पुरुषों के प्रति क्रोध, विद्रोह और आक्रोश की ज्वाला भड़की है जिससे नारी स्वयं अपनी रक्षा कर सके। लेखिका ने नारी स्वातंत्र्यता और समानता का लक्ष्य लेकर उसमें नारी चेतना को जागृत करने का प्रयास किया है। हर नारी में साहस जुटाने का सामर्थ्य लेखिका के लेखन में है।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है साहित्य लेखन काल से अद्यावधि साहित्य में नारी लेखन को पर्याप्त स्थान मिला है। प्रत्येक काल में लेखन के प्रतिमान भले ही पृथक–पृथक हों पर नारी की उपस्थिति इसमें प्रभावी परिलक्षित होती है। विवेच्यकाल में से नारी साहित्य और तत्संबंधी प्रसंगों को पृथक कर दिया जाए तो यह साहित्य अपूर्ण और नीरस ही सिद्ध होगा।

संदर्भः–

1. सुशीला मित्तल। आधुनिक हिंदी कहानी में नारी की भूमिकाए । पृ.–4
2. श्रीमती सरला दुबे। आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी चित्रण । पृ.11
3. कृष्णा अग्निहोत्री । संजनिया। जैसियाराम कहानी संग्रह । पृ.–11
4. डॉ. मीतालाल। प्रेमचंद का नारी चित्रण । पृ.–11
5. मनुस्मृति । मन्वर्थ मुक्तावली । श्लोक–56 । पृ.–114
6. वृहदारण्यकोपनिषद । अयमाकाश । पृ.–143
7. शतपथ ब्राह्मण । पृ.–14, 42 और 45
8. डॉ. रूपा सिंह । स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती । पृ.–15
9. डॉ. शैलजा माहेश्वरी । हिंदी व्यंग्य साहित्य में नारी । पृ.–46
10. डॉ. रूपा सिंह । स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती। पृ.–15
11. रोमिला थापर। भारत का इतिहास। पृ.–228
12. आशारानी व्होरा। भारतीय नारी की दशा और दिशा। पृ.–7
13. डॉ. रूपा सिंह। स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती । पृ.–19
14. आदिकालीन वीर रस की एक कविता के अंश
15. तुलसीदास । रामचरितमानस। चौपाईअंश
16. डॉ. सरिता वशिष्ठ । युगबोध और हिंदी नाटक। पृ.–87
17. जयशंकर प्रसाद । कामायनी । पृ.–114
18. रामधारी सिंह दिनकर । उर्वशी । पृ.–16
19. रामधारी सिंह दिनकर । उर्वशी । पृ.–17
20. शारदा सारस्वत । कृष्णा सोबती के उपन्यास और एक लड़की । पृ.–9
21. डॉ. आशा दत्तात्रय कांबले । कृष्णा सोबती के कथात्मक साहित्य में नारी पात्र । पृ.–27